निर्मल की निबंध यात्रा में संस्कृति और सांस्कृतिक संकट का विमर्श

'डॉ. शालिनी श्रीवास्तव

निर्मल वर्मा ने अपनी साहित्य सर्जना में कला साहित्य संस्कृति समाज इतिहास और सभ्यता से जुड़े प्रश्नों को उठाया है। वे अपनी रचनाशीलता के साथ ही इन प्रश्नों को हल करने का प्रयास भी करते है। वे मूलतः कथाकार ही थे किन्तु उन्होंने अपने चिन्तन का विस्तार निबंधों के माध्यम से किया है। अपने निबंधों में वे कहानियों की वैयक्तिकता से ऊपर उठकर चिन्तन की समग्रता पर बल देते हैं। उनके ज्यादातर निबंध एक प्रकार के वैचारिक समर को जन्म देते हैं। अपने निबंधों में लेखक ने धर्म, इतिहास, राजनीति, मार्क्सवाद, गाँधीवाद भारतीय संस्कृति और उस पर अंग्रेजी शासन से आए दबाव व सांस्कृतिक संकट को अपने वैचारिक विमर्श में विवेचित करने का प्रयास किया है।

हिन्दुत्व की अवधारणा और भारतीयता की पहचान के प्रश्नों तथा पूर्व पश्चिम की वैचारिक भिन्नता तथा उपनिवेशवाद जैसे विवादित मुद्दों को भी निर्मल ने अपने निबंधों में समाहित किया है। इन आधुनिक प्रश्नों पर तथाकथित आधुनिक हिन्दी समाज व साहित्य में वैश्विक स्तर पर कभी न खत्म होने वाली काफी बहसें हुई हैं किन्तु लिखने का यही जोखिम एक लेखक को नई पहचान दिलाता है। निर्मल जी का सृजक से बड़ा संरक्षक का रूप हमें उनके निबंधों में मिलता है। अपनी सृजन यात्रा के साथ ही वे भारतीय संस्कृति के संरक्षक के रूप में भी काम करते रहे हैं।

हर युग और काल में लोगों का अपनी संस्कृति के प्रति लगाव रहा है और इसके पीछे सबसे बड़ा कारण उसकी अस्मिता रही है। जब एक संस्कृति पर दूसरी संस्कृति का प्रभाव पड़ने लग जाता है तो उस संस्कृति की अस्मिता पर संकट आने लग जाता है और उस संकट को दूर करने या उस संकट से अपनी संस्कृति को बचाने के लिए एक बौद्धिक वर्ग अपने प्रयास करता रहता है। हम जिस समाज जाति या देश में रहते है सायास या अनायास उसके प्रति हमारा मोह हो जाता है और हो भी क्यों न हो वह हमारी है और हम उसके अनिवार्य अंग है। यही बात निर्मल वर्मा के जेहन में भी हमेशा बलपूर्वक रही और इसी के परिणामस्वरूप हमेशा वे अपनी भारतीय संस्कृति से प्रेम करते रहे व उस पर आने वाले संकटों के प्रति भारतीय लोगों को सचेत करते रहे।

उपनिवेश पूर्व भारत की संस्कृति को उपनिवेशोत्तर भारत में व सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठापित करने का एक सायास प्रयास निर्मल जी करते है उनका मानना था कि भारतीय संस्कृति का ह्रास उपनिवेशकाल में हुआ है। योरोपीय देशों की तुलना में भारतीय संस्कृति अत्यधिक महती थी, लेकिन इन देशों ने इस संस्कृति को नष्ट करने के प्रयास किये व इसे पददलित किया। किसी भी समाज में सभ्यता और संस्कृति साथ–साथ चलते है उन्होंने अपने आपको सभ्य मानने वाले योरोपीय देशों के ऊपर भारतीय सभ्यता व संस्कृति को स्थान दिलाने का कार्य किया। पतनोन्मुख भारतीय संस्कृति को विदेशी आक्रमणों और उनके दबावों से मुक्ति दिलाने का पूरा प्रयास उन्होंने अपनी वैचारिक दृष्टि से किया।

वे भारतीय संस्कृति को सबसे प्राचीन सभ्यता मानते है जो हजारों हजार वर्षो से अपने दर्शन के साथ सतत प्रवाहमान है। वे भारतीय सभ्यता को श्रेष्ठ प्राचीन सभ्यताओं में मानते हैं जो आज तक अपना अस्तित्व बचाए हुए देश और दुनिया में अपना परचम फहरा रही है भारतीय संस्कृति का दर्शन और उसकी आध्यत्मिकता ही इसके केन्द्र बिन्दु रहे हैं जिससे यह संस्कृति विभिन्न विदेशी संकटों के बावजूद अपने अस्तित्व को बचाए हुए है। वे अपने एक निबंध 'भारतीय संस्कृति और राष्ट्र' में इसके जीवित रहने के कारणों की

व्याख्या करते है ''यह सभ्यता बोध यदि इतिहास के असंख्य और असह्य प्रहारों के बावजूद जीवित रहा तो सिर्फ इसलिए कि भारत में आदि जीवन के दर्शन – सूत्र महज पोथियों के भीतर नहीं समकालीन भारतीय की स्मृति में प्रवाहमान हैं। स्वप्न की तरह हर स्मृति की अपनी बिम्ब भाषा होती है, वह कहीं से भी उत्प्रेरित हो सकती है, वैदिक ऋचाओं, पौराणिक कथाओं अथवा महाकाव्यों से . ..... भारतीय सभ्यता की यह अद्भुत विशेषता रही है जो उसके जीवंत होने की मर्यादा है कि वह 'अतीत को व्यतीत न मानकर उसे समकालीन भारतीय जीवन की ऐसी प्रतीक व्यवस्था में संयोजित कर पाई है जो आज भी उतनी अर्थवान और संस्कार सम्पन्न है जितनी पहले कभी थी।''[1]

भारत के क्रम में संस्कृति संबंधी अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए वे स्वतन्त्रता से पूर्व के कई पक्षों को उठाते हैं। जिसमें भारतीय संस्कृति और उसकी सभ्यता की एक लम्बी कहानी उभर कर आती है। अंग्रेजी शासन के दो सौ वर्षों में किस तरह भारतीय संस्कृति और सभ्यता तथा भारतीय जनमानस की क्षति हुई है उसे वे भारतीय संस्कृति के संकट के रूप में परिभाषित करते है। हमारा अपनी जड़ों से पलायन करना, अपनी संस्कृति और परम्पराओं को भूलना, पश्चिम की अन्धी नकल करते हुए अपने जातीय संस्कारों को भूलना ही उनकी नजर में संस्कृति का सांस्कृतिक संकट है। वे संस्कृति को सभ्यता से जोड़ते हुए विश्लेषित करते है ''स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हम भारत को एक राष्ट्र एक राज्य तन्त्र मानने के इतने अभ्यस्त हो चुके है कि यह विश्वास करना मुश्किल लगता है कि इन सबसे पहले वह एक सभ्यता का परिवेश रहा है, जिसके भीतर मनुष्य अपने जीवन के कुछ मूलभूत और मूल्यवान सत्यों को मूर्तिमान कर सकें। इसलिए मैंने इस 'सभ्यता' शब्द का इस्तेमाल करना अधिक उपयुक्त समझा''।[2]

भारत की आध्यात्मिक शक्ति और उसके दर्शन ने ही ''भारतीय संस्कृति'' को बचा रखा है, नहीं तो अंग्रेजों के आक्रमण और 200 वर्षों की गुलामी ने भारतीय जनमानस को मानसिक और शारीरिक रूप से दुर्बल ही बना दिया था। 'बहुवचन' के एक लेख में निर्मल वर्मा के इस केन्द्रीय भाव को रमेश चद्र शाह ने स्वीकार किया है। 'सांस्कृतिक ऋणशोध का अनूठा सबक : निर्मल वर्मा का सैबन्धिक कृतित्व' में रमेश चन्द्र शाह ने पं0 विद्यानिवास मिश्र और निर्मल वर्मा के विचारों की समानता को संस्कृति विषयक चिन्तन के रूप में रेखांकित किया है।

भारतीय संस्कृति के हजारों वर्षो से जीवित रहने के क्रम को आध्यात्मिकता से जोड़ते हुए शाह ने मिश्र जी के और निर्मल वर्मा के विचारों को समाहित किया है उन्होंने अपने इस लेख में लिखा है कि ''निर्मल जी बगैर किसी लाग–लपेट के, इस सत्य को स्वीकारते और बलपूर्वक दोहराते हैं कि यदि भारत का सभ्यता–बोध और सांस्कृतिक परम्पराएँ आज भी मौजूद है तो उसका मुख्य कारण यह केन्द्रीय आध्यात्मिक तत्व है, जिसमें इतनी क्षमता और ऊर्जा थी कि इतिहास के निर्मम थपेड़ों के बावजूद वह समस्त प्रभावों को अपने भीतर समाहित कर सका। मुझे यहाँ प्रसंगवश स्व0 पं0 विद्यानिवास मिश्र की कही एक बात याद आ रही है कि 'हमारी ट्रैजेडी यह है कि भारत की सामाजिक संस्कृति के नाम पर भारत की मुख्यधारा को उपेक्षणीय मान लिया गया है। निर्मल जी निश्चय ही इस ट्रेजेड़ी के प्रति संवेदनशील थे और जैसा कि अभी–अभी हमने उनके निबंधों के हवाले से देखा, उन्होंने अपने स्वानुभवों और अर्जित विवेक से इस विडम्बना को अपने ढ़ंग से रेखांकित किया है। विद्यानिवास जी की ही एक दूसरी मर्मोक्ति भी यहाँ मुझे बरबस याद आ रही है कि 'पाश्चात्य संस्कृति को सबसे ज्यादा प्रतिरोध भारत ने ही दिया, किन्तु उसे सबसे अधिक सहानुभूति के साथ देख–परख सकने वाले भी भारतीय ही हुए।' निर्मल वर्मा इससे भी पूरी तरह संवेदित और सहमत होते हैं क्योंकि वे स्वयं अपने आप में इस बात में निहित सत्य के जीते–जागते दृष्टान्त थे।''[3]

संस्कृति विषयक चिन्तन के साथ ही वे एक बात और उठाते रहे है और वह है सांस्कृतिक संकट का प्रश्न जो उन्हें हमेशा से ही बेचैन करता रहा है। उन्होंने अपने संबधों में जहाँ–जहाँ भारतीय संस्कृति का चित्रण किया है वहाँ–वहाँ सांस्कृतिक संकट और विदेशों के कारण आए हुए दबावों को रेखांकित किया है। इनका यह स्पष्ट मानना है कि भारत में जो सांस्कृतिक ह्रास हुआ है उसका मुख्य कारण अंग्रेजी शासन रहा है। उपनिवेश काल में भारतीय संस्कृति और सभ्यता को विदेशी शासन ने जड़–मूल से उखाड़ने का प्रयत्न किया। अंग्रेजों ने भारतीयों का अपने ढंग से पुनः निर्माण किया जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से अंग्रेजों के अनुकूल हो।

''भारतीय इतिहास में यह अभूतपूर्व घटना थी जब जीवन के सहज प्रभाव को इतिहास के चौखटों मे परिभाषित किया जाने लगा। भारत में अंग्रेजी राज का सबसे अधिक दुखदायी प्रभाव यह नहीं था कि हम आर्थिक और राजनैतिक रूप से गुलाम हुए, बल्कि यह कि इतिहास ने हमारी चेतना को पहली बार अतीत, वर्तमान और भविष्य जैसे कटघरों में परिभाषित किया।''[4]

भारत पर आए हुए इस सांस्कृतिक संकट की घड़ी में हमारे बुद्धिजीवी वर्ग की जो नैतिक जिम्मेदारी बनती थी उनकी भूमिका पर भी निर्मल वर्मा ने प्रश्न चिह्न लगाया है जो हमारे देश के सांस्कृतिक संकट के लिए जिम्मेदार है उनका मानना है कि भारतीय बुद्धिजीवियों ने इतिहास से आक्रान्त होकर पश्चिम के आगे घुटने टेक दिए। वे भारत की मुक्ति का रास्ता पश्चिम की राजनीतिक, सामाजिक संस्थाओं में ढूंढ़ने लगे। वे बुद्धिजीवी थे भूल गए कि ये संस्थाएँ भी अंग्रेजों की नीतियों को पूरा करने के लिए ही बनायी गई है। इनका हमारी समानता स्वतन्त्रता और जीवन पद्धति से कोई लेना–देना नहीं है।

इसके दूसरी तरफ ही निर्मल वर्मा ने रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बंकिम चन्द्र चटर्जी, भारतेन्दु, सरदार बल्लभ भाई पटेल, वीर सावरकर आदि के उदाहरणों द्वारा यह भी प्रस्तुत किया है कि इन बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति पर आए हुए संकट को पहचाना और उस संकट से भारतीयों को उबारने का प्रयत्न भी किया। वे अपने एक लेख 'शताब्दी के ढलते वर्षो में' इस संकट की और इशारा भी करते है कि ''हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति को एक ऐसी संहारी ध्वंसात्मक लोलुप सभ्यता का सामना करना पड़ा है जो प्रगति और पश्चिमीकरण के नाम पर भारत की परम्परागत दृष्टि को नष्ट कर रही थी ....। धर्म और समाज के छद्म, आधुनिकीकरण और ईसाई धर्म के प्रति एक बचकाने सम्मोहन के आगे सिर्फ एक रामकृष्ण परमहंस, बंकिम चटर्जी, विवेकानन्द हिन्दी भाषी क्षेत्र में भारतेन्दु ये कुछ साहित्यकार और उत्तरी भारत में दयानन्द सरस्वती, लेकिन इन गिने–चुने अपवादों को छोड़कर हिन्दू–मुसलमानों का समूचा एलिट वर्ग पश्चिम की आधुनिकता और ईसाई धर्म की तथाकथित उन्मुक्तता के आगे घुटने टेके बैठा था।..... भारत के संकट की यह शुरूआत थी।''[5]

सांस्कृतिक संकट की जड़ों को तलाशते हुए वे कई जगह भारत में पूर्व में हुए सांस्कृतिक ह्रास और वर्तमान तक उसके परिणामों के भुगतान को स्पष्ट करते हैं स्वतन्त्रता से पूर्व के हालातों को उन्होंने बड़े ही बेबाकी ढंग से प्रस्तुति दी है। उनका मानना है जब अंग्रेजो का शासन भारत में स्थापित नहीं हुआ था उस समय तक हमारा देश जिसे 'सोने की चिड़ियाँ' कहा जाता था आर्थिक सामाजिक और सास्कृतिक रूप से बहुत समृद्ध था। उस समय जातीयता, प्रान्तीयता, औद्योगिकीरण, साम्राज्यवाद, अस्पृश्यता, गरीबी, छुआछूत, भेदभाव, लिंगभेद, असमानता जैसी समस्याएँ नहीं उपजी थीं। अंग्रेजो के भारत आगमन के साथ ही इन समस्याओं ने सिर उठाना शुरू कर दिया जो कि पश्चिमी अवधारणाएँ थी। इन विखण्डित अवधारणाओं ने भारत में अपनी जड़े जमा

ली जिसके परिणाम हम आज तक आंतकवाद और नक्सली हमले के रूप में भोग रहे है। इन कुत्सित विचारधाराओं को लार्ड मैकाले, मुहम्मद अली जिन्ना, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि ब्रिटिश नेताओं ने भारत में जहर की तरह घोल दिया।

जिन्ना के भारत पाकिस्तान विभाजन और लॉर्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति के परिणाम हम भारतीय आज भी भुगत रहे हैं। अंग्रेज चले गये लेकिन उनकी नीतियाँ आज भी यहीं हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या किसी देश का होगा कि आज हमारी संसद भी उन्हीं ब्रिटिश नियमों की तरह चल रही है जिसे ब्रिटिश शासन ने अपने लिए बनाया था। आज हम वैचारिक रूप से अपनी भाषा अपने साहित्य के प्रति भी पंगु ही हैं। हमारी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व स्थापित होता जा रहा है। इन सभी समस्याओं पर निर्मल वर्मा ने हमारा ध्यान दिलाया है और उसे वे एक शब्द में कहें तो सांस्कृतिक संकट के रूप में परिभाषित करते हैं।

ब्रिटिश शासकों की हैवानियत का अन्दाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद में लार्ड मैकाले ने एक सम्बोधन दिया था जिसमें उन्होंने भारत की सांस्कृतिक परम्परा को कैसे विखण्डित किया जाए और भारत को कैसे जीता जाए इस बात की ओर इशारा किया था। भारत के स्वाभिमान और उसकी संस्कृति से उसे कैसे उन्मूलित किया जाए, इस घृणित कार्य को कैसे अन्जाम तक पहुँचाया जाए इसकी विशद् व्याख्या 2 फरवरी, 1835 की ब्रिटिश संसद की तारीख में आज भी दर्ज है। लार्ड मैकाले ने अपने इस सम्बोधन में कहा कि– ''मैं पूरे भारत में घूमा हूँ और मैंने ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं देखा, जो चोर, भिखारी हो। मैंने इस देश में इतना धन, ऐसे उच्च नैतिक मूल्य, ऐसे उच्च कलेवर के लोग देखे हैं कि मैं नहीं समझ पाता कि हम कभी भी इस देश को जीत सकेंगे, जब तक की हम इस देश की रीढ़ की हड्डी न तोड़ दें, जो उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत हैं, और इसलिए मेरा सुझाव है कि हमें उसकी प्राचीन शिक्षा पद्धति और संस्कृति पर अपनी शिक्षा पद्धति व संस्कृति प्रतिस्थापित करनी होगी क्योंकि यदि भारतीय जन यह सोचने समझने लगेंगे कि जो कोई चीज विदेशी और विशेष रूप से अंग्रेजी है, वह उनकी अपनी चीजों से बेहतर और बड़ी है, तो वे अपने स्वाभिमान और स्वसंस्कृति को खो देंगे ओर वे वैसे ही बन जायेंगे जैसा कि हम उन्हें बनाना चाहते हैं। अर्थात् सही मायने में हमारे आधिपत्य वाला राष्ट्र।''[6]

जैसा अंग्रेज हम भारतीयों को बनाना चाहते थे वैसे ही हम तब से लेकर आज तक बने हुए हैं। ब्रिटिश शासकों ने अपनी इस घृणित मानसिकता को हम पर थोप दिया और हम आज तक सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से उस घृणा उस पीड़ा के परिणामों को भोग रहे हैं। अंग्रेजी भाषा का भारत की अन्य हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं के ऊपर हो जाना इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। इस बात को निर्मल वर्मा बड़ी कड़ाई से प्रस्तुत करते हैं। प्रेम कुमार से बातचीत के सन्दर्भ में वे भाषा के इस प्रश्न को उठाते हैं और हमारे बुद्धिजीवी वर्ग पर इसकी नैतिक जिम्मेदारी को सौंपते हैं। ''भाषा का प्रश्न केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है। एक पूरी संस्कृति के मर्म और अर्थों को सम्प्रेषित करने की सम्भावना उसके भीतर अन्तर्निहित है। भारत में एक समय में समूची संस्कृति के सार्वभौमिक सत्य को संस्कृत भाषा में व्यक्त किया जाता था। उन्नीसवीं सदी में जब यह प्रश्न अंग्रेजी शासकों के समक्ष आया कि कौन सी भाषा शासकीय हो तो उनमें से कुछ लोग संस्कृत को शासकीय भाषा बनाना चाहते थे, पर फिर कुछ औपनिवेशिक शासकों ने कुछ स्वार्थों के कारण अंग्रेजी को ही शासकीय बनाना सही समझा क्योंकि वे भारत के शिक्षित वर्ग को अपनी परम्परा से उन्मूलित करके पश्चिम की वैचारिक दासता से मुक्त नहीं करवा सके हैं। इसके बारे में समूचे बुद्धिजीवी वर्ग और हमारे शासक वर्ग को गम्भीरता से सोचना चाहिए। यदि हम वैचारिक रूप से स्वयं अपनी भाषा में सोचने, सृजन करने की सामथर्य नहीं जुटा पाते, तो हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता का क्या मूल्य रह जायेगा?''[7]

निर्मल वर्मा का यह स्पष्ट मत है कि भले ही हम राजनैतिक दृष्टि से अंग्रेजों से स्वतन्त्र हो गए हैं लेकिन वैचारिक दासता के शिकंजे में हम आज तक जकड़े हुए हैं। हम भारतीयों को अपनी शासन व्यवस्था, कानून व्यवस्था और अपनी जीवन–पद्धति के समूचे औपनिवेशिक ढाँचे में परिवर्तन लाकर शुद्ध रूप से उसे भारतीय बनाना होगा।

इन प्रखर विचारों और उत्तेजक प्रश्नों के कारण ही सुधीश पचौरी उन्हें आधुनिक भारत का 'नीश्ते' कहते हैं। नीश्ते को तो किसी महामानव का इन्तजार था लेकिन निर्मल वर्मा को तो हर महामानव पर एक भारतीय की तरह ही सन्देह है। सुधीश पचौरी अपने एक लेख 'निर्मल : पवित्र परिवेश का निर्माण'' में लिखते हैं कि क्या हम नीश्ते के निहित पावर डिस्कोर्स और उसकी अप्राप्यता की गहरी छटपटाहट निर्मल में नहीं देख सकते ? क्या हम निर्मल में ताकत का कोई आवाहन नहीं देख सकते जो दो सौ साल से कुचली जा रही संस्कृति के भीतर कराह की तरह होना ही चाहिए। निर्मल हमें बार–बार इस इस ताकत के केन्द्र की ओर ले जाना चाहते हैं बार–बार वे अथक है। और उनकी जिद बहुत गहरी है जो किसी आपात स्थिति में नहीं बनी है। यह उनका स्थायी मन है। हमारी स्मृतियों में अंग्रेज और पश्चिम और योरोप को लेकर जो कुछ घृणा प्यार संचित होता रहता है जिससे योरोपीय आधुनिकता ही बनती बिगड़ती रहती है। उसका सत्व है निर्मल में, जो अपील करता है और इसीलिए वे सम्मोहित करते हैं।''[8]

अपनी बेबाक बयानी और विचलित कर देने वाले प्रश्नों की बौछार करने के कारण ही हिन्दी साहित्य में वे के चिन्तन की बहुत आलोचना भी हुई है और उन पर विदेशीपन के कई आरोप, प्रत्यारोप भी लगते रहे हैं। कई बार तो उन्हें पश्चिम का 'एजेण्ट' तक कहा गया, लेकिन वे इन आलोचनाओं और आक्षेपों से विचलित हुए बिना लगातार अपना सृजन कर्म करते रहे और उन प्रश्नों को लगातार उठाते रहे जिन पर हिन्दी लेखकों का कभी ध्यान ही नहीं गया।

निर्मल वर्मा के इसी प्रखर चिन्तन को ओम निश्चल ने नया ज्ञानोदय' के एक लेख भूलने के विरूद्ध' में उद्धत किया है। 'निर्मल जी भारतीय संस्कृति संबंधी चिन्तन को लेकर आलोचकों की चर्चा के केन्द्र में रहे हैं। भारत का अतीत उनके लिए केवल गौरवगान का विषय नहीं था, बल्कि भारतीय परम्पराओं के बरक्स पश्चिम उतर्द्वन्द्वों को समझने का शास्त्र भी था। अपने विश्वासों और चिन्तन के बल पर वे अपने आलोचकों के सवालों से अन्त तक भिड़ते रहें। उनके सनातनी रूझानों को सामने रखते हुए उनकी विचारधारा पर आक्रमण होते रहे हैं, पर निर्मल को इसकी कतई चिन्ता नहीं थी। उनका रचना संसार जितना भावप्रवण और सत्वग्राही है, उनके चिन्तन की दुनिया भी उतनी ही शुद्ध, स्वाभिमानी और मानवीय है। मानवीय मूल्य बचे रहें, हमारी सांस्कृतिक पहचान बनी रहें, हम अपनी परम्परा से विमुख न हों, यह कामना उनके कथा और वैचारिक संसार दोनों में समुज्जवलता के साथ प्रतिबिम्बित हुई है।''[9]

निर्मल वर्मा की निबंध–यात्रा के ये सांस्कृतिक विमर्श है जो हम भारतीयों के सामने यक्ष प्रश्न के रूप में उपस्थित है कि क्या हम सही मायने में भारतीय हैं ? और क्या हम अपनी संस्कृति और सभ्यता को आज भी उसी तरह जीवित रख पा रहें हैं जैसी वह प्राचीन काल में थी ? हम सभी को एक बार फिर इस पर विचार करना होगा और अपनी स्वविवेक से निर्णय लेना होगा।

***व्याख्याता,हिन्दी विभाग**
एस.एस.जैन सुबोध, पी.जी. कॉलेज
रामबाग सर्किल, जयपुर

सन्दर्भ सूची

1. *वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षों में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, पृ. सं. 111–112*
2. *वर्मा निर्मल, भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2001, पृ. सं. 112*
3. *गोपीनाथन प्रो. संपा, बहुवचन अंक 15, (अप्रेल–जून, 2006) पृ. सं. 64*
4. *वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षों में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, पृ. सं. 144*
5. *वर्मा निर्मल, ढलान से उतरते हुए, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1985, पृ. सं. 66*
6. *आर्य गजानन्द, परोपकारी (पाक्षिक पत्रिका, अंक 14, अक्टूम्बर, 2008) पृ. सं. 369*
7. *गिल गगन, संपा., संसार में निर्मल वर्मा, रेमाधव पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006 पृ. सं. 2006*
8. *पचौरी सुधीश, निर्मल वर्मा और उत्तर उपनिवेशवाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. सं. 62*
9. *श्रोत्रिय प्रभाकर, नया ज्ञानोदय (अंक – 34 दिस0 2005) पृ सं. 28*